eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 01, January 2024

स्वराज्य के उद्घोषक बाल गंगाधर तिलक का राजनीतिक चिन्तन

[1]डॉ0 अभिलाष सिंह यादव
[1]एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, हण्डिया, प्रयागराज उ0प्र0

Received: 25 December2023 Accepted & Reviewed: 15 December2023, Published : 01 Jan 2024

Abstract

यदि तिलक न होते तो भारत अब भी पेट के बल सरक रहा होता, सिर धूल में दबा होता ओर उसके हाथ में दर्खास्त होती। तिलक ने भारत की पीठ को बलिष्ठ बनाया। मुझे विश्वास है कि देश अब सीधा होकर चलने लगेगा और तब देश उस व्यक्ति को आर्शीवाद देगा, जिसने धूल से उठाकर उसे खड़ा कर यिा।''[1] विश्व यात्री संत निहाल सिंह ने यह शब्द उस योद्धा के विषय में कहे थे जिसने मृत्यु सेपूर्व स्वराज्य हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।''[2] भारत के अस्तित्व की चिन्ता करने वाले इस महान् सपूत ने 'गणपति महोत्सव' तथा 'शिवाजी जयन्ती'' के आयोजन करके सांस्कृतिक जीवन मे जिस नवचेतना के अंकुर प्रस्फुटित किये थे उससे देश में स्वाभिमान और संगठन की भावना, बलिदान और समर्पण का नया अध्याय प्रारम्भ हो गया। इस महान् यात्री को प्रेरक शक्तियों के विषय मे संक्षेप में जानना आवश्यक हे।

लोकमान्य तिलक के सम्पूर्ण जीवन को दो महान शक्तियों ने प्रेरित किया। प्रथम था भारतीय इतिहास तथा द्वितीय प्रेरक शक्ति थी, भारतीय संस्कृति को जिन ब्रिटिश लेखकों ने लिखा था, उन्होंने निष्पक्ष होकर भारतीय इतिहास की पुन्य आत्माओं की विवेचना नहीं की थी। अंग्रेज इतिहास लेखक ग्रांड उफ और उसके हमजोलियों ने अफजल खॉ के वध की घटना को ऐसी रीति से चित्रित किया था जिससे शिवाजी छल प्रयोग और हत्या के दोषी सिद्ध हों। पढ़े–लिखे समाज में भी उनका यही स्वरुप चित्रित होने लगा शिवाजी ने राष्ट्र के जीवन को जिस कुशाग्र बुद्धि से संगठित किया था। वह तिलक के लिए अपूर्व प्रेरणा का विषय बन गया। 30 मई सन् 1895 को बम्बई में शिवाजी उत्सव मनाने के लिए विशेष सभा हुई। वैशाख सुदी 2 के को दिन रायगढ़ केकिले में शिवाजी महोत्सव मनाया गया। 6 अप्रैल सन् 1896 को इस उत्सव में शासन ने कुछ अवरोध पैदा किये, किन्तु तिलक के व्यक्तित्व ने इस उत्सव को निर्विध्न बना दिया। उन्होंने गणपति उत्सव को सन् 1894 में इतने विशाल आधार पर मनाया कि महाराष्ट्र के इतिहास में यह अवसर स्वर्णक्षरों में लिखा गया। इस उत्सव के पीछे सामाकिता और एकता के विचार मुखरित थे। लोकमान्य ने सामाजिक और नैतिक दृष्टि से इस आयोजन की उपयोगिता को प्रदर्शित कर दिया।

बीजशब्द– राष्ट्रीय आन्दोलन, स्वराज्य के उद्घोषक, बाल गंगाधर तिलक का राजनीतिक चिन्तन।

Introduction

गणपति उत्सव पर लोकमान्य को मूर्तिपूजक सनातनी और रुढ़िवादी कहा गया– वस्तुस्थिति यह थी कि लोकमान्य ने प्राचीन शुष्क रुढ़ि के अस्थिर पंजर में मॉस और रुधिर का संचार किया। उन्होंने इस आयोजन से जोशिले साम्प्रदायिक मुलसमानों को इससे मूक बना दिया। अंग्रेज अधिकारियों ने इस आयोजन को 'तिलक की राजनीतिक उपलब्धि' तथा 'कोरि शरारत' बताया। वस्तुतः वह हिन्दू धर्म पर अगाध आस्था रखते। धर्म उनके लिए प्रेरणास्रोत था। उन्होंने गणपति उत्सव मनाकर जाति को अमर शक्ति और बल प्रदान किया।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 01, January 2024

'दि आर्कटिक होम ऑफ दि वेदाज' ग्रन्थ के विचारक को इतिहास के महापुरुषों ने ही प्रभावित नहीं किया। इस प्रभाव का स्पष्ट दर्शन उनके 'मॉडले जेल' के समय 'गीता रहस्य' की रचना से मिलता है। उन्होंने गीता मे कर्मयोग की दीक्षा दी। ''हिन्दुत्व के भीतर प्रविष्ट जिस कालकुट को किसी भी तत्वचिंतक की दृष्टि नहीं देख सकी थी, उसे तिलक की ऑखों ने देख लिया। तिलक जी ने उसे केवल देखा ही नहीं, प्रत्युत, अपनी प्रखर बुद्धि से उसे उन्होंने दूर भी कर दिया। इसीलिये, हमारा मत है कि गीता एक बार तो भगवान श्री कृष्ण के मुख से कही गयी, किन्तु दूसरी बार उसका सच्चा आख्यान लोकमान्य ने किया है। इन दोनों के बीच की अन्य सारी टीकाऍ और व्याख्याऍ गीता के सत्य पर केवल बादल बनकर छाती रही है।''[3] तिलक यदि राजनीति के सक्रिय अंग न बनते तब सम्भवतः वह महान् विचारकों की श्रेणी मे अपने को रखने में पूरी तरह सफल होते। ''लोकमान्य यदि राजनीति में प्रवेश न करते तो उनकी निःसन्देह संसार के अन्यतम महान् विचारकों और पण्डितों मे गणना होती, क्योंकि तब वह अपनी स्वाभाविक प्रतिभा को पूरी तरह शास्त्रीय दिशा में लगा सकते।''[4] वस्तुतः उन्होंने देश को कर्मयोग की शिक्षा देकर सुप्तावस्था से जागृत अवस्था में ला दिया था। उनकी प्रेरणा राष्ट्रीय जीवन को अमूल्य निधि के रुप में स्वीकार की गई।

उग्रवाद के प्रतिनिधि – तिलक आरमकुर्सी पर बैठने वाले सुधारक नहीं थे। वह जनता के लिए तथा जनता के कार्यकर्त्ता थे। ''उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के उदाहरण से यह सिद्ध कर दिया कि साहस तथा आत्मबलिदान से देश में नई चेतना आ सकती है।''[5] यह सही है कि उन्होंने मृत प्रायः जाति को संघर्ष करने की प्रेरणा दी और इस संघर्ष से एक नई जाति का उदय हुआ, एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। कोरे आदर्शवाद से उनका सम्पर्क नहीं था। उन्होंने व्यावहाकि विषयों पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से चिंतन किया। उनका चिंतन उनके कार्यो का आधार बना, ''उनमें अपनी मराठा जाति के तेज संस्कार थे। शक्तिशाली मस्तिष्क, शक्तिशाली शस्त्र था, जिससे वह (मराठा जाति) महान् मुगल साम्राजय के खिलाफ लड़े। यदि उस समय भारत की जनता में राजनीतिक चेतना पर्याप्त मात्रा में होती हो वह कामवेल के समान देश के सफल नायक होते।''[6] यह इस महान् व्यक्ति की महान् सफलता का परिचायक है कि बंगाल विभाजन पर देश आक्रोश में भड़क उठा, विवश होकर अंग्रेजों को इस विभाजन को समाप्त करना पड़ा, उन्होंने अपने विचारों को और कार्यों के कारण अपने समकालीन राजनीतिज्ञों से कहीं अधिक कष्ट झेले हैं, लेकिन सभी परिस्थितियों में उन्होंने भारत के लिए स्वतन्त्रता के झण्डे को ऊँचा ही रखा।''[7]

जिस समय भारत के अधिकांश राजनीतिज्ञ आरामकुर्सी पर बैठकर अंग्रेजों की न्यायप्रियता के पक्ष में भाषण दे रहे थे, उस समय 'स्वराज्य' और 'स्वाधीनता' की मॉग करने वाले यशस्वी वीर को राजद्रोह के लिए दण्ड भोगना पड़ रहा था। ''तिलक अपने देश के तथा उसके लोगों के लिए उबलता हुआ प्रेम हृदय में लेकर पैदा हुए।''[8] तिलक की राजनीति 'जैसे को तैसा' की राजनीति थी। 'तिलक ने स्पष्ट किया कि भारत की प्रगति तथा ब्रिटिश शासन दोनों बेमेल है। शासन और शासित के विभेद कठिनता से दूर होने वाले है। राजनीतिक संघर्ष प्रथम है। सामाजिक सुधार तक कठिन है जब तक शक्ति औपनिवेशिक शासकों के हाथों में है।

अन्तिम रुप से राजनीतिक संघर्ष प्रथम है। सामाजिक सुधार तक कठिन है जब तक शक्ति औपनिवेशिक शासकों के हाथों में है। अन्तिम रुप से राजनीतिक संघर्ष का उद्देश्य भारतीयों द्वारा शक्ति को प्राप्त करना है।''[9] तिलक के जीवन का इतिहास अपने पूर्वज तथा समकालीन उदारवादियों के जीवन का इतिहास से

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 01, January 2024

सर्वथा भिन्न है। तिलक ने प्रस्तावों और प्रार्थनाओं को राजनीति को पूरी तरह से सन्यास दिला दिया था। विशाल जनसमूह को उसकी कठिनाइयों से अवगत कराकर उन्हें दूर करने के लिए स्वाधीनता का मंत्र दिया।

तिलक से पूर्व निर्भयता से अपनी बात को कह पाने का साहस राजनीति में देखने को कठिनाई से ही मिलेगा। उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि देश में एक प्रबुद्ध और जागरुक राजनैतिक चेतना का उद्भव हुआ। उन्होंने स्वराज्य की बात कहकर स्वराज्य को बहुत पास ला दिया था। ''स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करके रहूँगा' इस उद्घोषक ने सम्पूर्ण भारत में भावात्मक गूँज भर दी। उनके दृष्टिकोण ने बहुत से उदारवादियों के हृदयों में संदेह पैदा कर दिया। रानाडे तथा बाद में गोखले और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने न केवल उनकी भाषा की हिंसा को न केवल चेतावनी के रुप में स्वीकार किया बल्कि वह संदेह करने लगे कि जैसे वह प्रथम ब्राह्मण के रुप में द्वितीय एक मराठा के रुप में बोलते एवं सोचते हैं तथा बाद में वह अकस्मात ऐसे मनुष्य के रुप की कल्पना करते हैं, जो भावी भारत को संगठित देखना चाहता है।''[10] इस धारणा ने ही लोकमान्य को जनमानस के निकट लाकर उग्रवाद का प्रतिनिधि बना लिया। उन्होंने सरकार से याचना के रुप में कभी कुछ स्वीकार नहीं किया। अपने पत्रों के माध्यम से उन्होंने जनजीवन को पराधीनता से मुक्ति पाने के लिाए चेतनामय कर दिया। सन् 1896 का दुर्भिक्ष और सन् 1897 में प्लेग के प्रभाव से दुखी होकर उन्होंने जहॉ एक तरफ सरकार की आलोचना की वहॉ दूसरी तरफ उन्होंने रचनात्मक सहयोग देकर नये विश्वासों को स्थापित किया।

अंग्रेजी शासन के प्रति दृष्टिकोण– लोकमान्य का व्यक्तित्व और सम्पूर्ण जीवन संघर्ष की एक संगठित कहानी है। इतिहास ने उन्हें जो प्रेरणा दी उस प्रेरणा के वशीभूत उन्होंने नये इतिहास की रचना की। सी0वाई0चिन्तामणि जो तिलक के आलोचक थे उन्होंने भी यह स्वीकार किया 'स्वाधीनता का उत्कृष्ट प्रेम उनके जीवन का स्थायी भाव था।' यह सही है कि उनके लिए स्वराज्य धर्म था, स्वराज्य उनके लिए जीवन था। उनके अपने ही एक लेख के अनुसार, 'स्वराज्य के बिना हमारा जीवन और हमारा धर्म व्यर्थ है।' एक तरफ तिलक का यह दृष्टिकोण था और दूसरी तरफ ब्रिटिश शासन की निरंकुशता थी। लोकमान्य यह पूरी तरह से जानते थे कि स्वराज्य की मॉग ही ब्रिटिश सरकार को अप्रसन्न करने वाली है। स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए जो उपाय किये जायेगे उनसे अंग्रेजों का अप्रसन्न होना स्वाभाविक है। अध्यापन के कार्य से मुक्त होने के बाद केसरी और मराठा में जिन विचारों का प्रतिपादन किया उनसे ब्रिटिश शासन नाराज हुआ। उन पर दो बार राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें कारावास का दण्ड भी भोगना पड़ा।

बंगाल विभाजन के बाद देश में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन का आरम्भ हुआ। उसके लिए तिलक का सक्रिय कार्य सदैव स्मरण रहेगा। स्वदेशी आन्दोलन के लिए उन्होंने 'गणपति महोत्सव' का उपयोग किया। बहिष्कार के लिए नागरिकों को तैयार किया। स्पष्ट रुप से वह सरकार के किसी भी ऐसे कार्य का समर्थन नहीं कर सकते थे जो भारत के हितों के विरुद्ध हो। उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि भारत के हित और ब्रिटिश शासन के हित एक दूसरे के विरोधी है। यही कारण था कि भारत के हित और ब्रिटिश शासन के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार नहीं था। उदारवादी नेताओं का अंग्रेजों की न्यायप्रियता मेंपूरा विश्वास था लेकिन तिलक को उनकी न्यायप्रियता में भला कैसे विश्वास होता उन्हें तो उस शासन ने सदैव संदेह में चेतावनी और जेल की सजा ही दी थी। अंग्रेज उनसे इतनी शत्रुता रख्ते थे कि उन्होंने हिंसात्मक कार्यवाइयों में फसाने की बार–बार कोशिश की। राजनीतिक अपराधों पर की जाने वाली कार्यवाही के

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 01, January 2024

सुझाव व सिफारिशें तैयार करने वाली रौलट समिति ने भी उन पर अनुचित व अनावश्यक आक्षेप किये तिलक की प्रतिष्ठा और ख्याति पर सामान्यतः पूरा प्रभाव डालने वाले तथा शिरोल केस में उठायी गई बातोंपर हानिप्रद ढ़ंग से आक्षेप करने वाले निष्कर्ष निकाले।''[11] अंग्रेजों की न्यायप्रियता, निष्पक्षता तथा उदारता में उनकी किंचितमात्र भी आस्था नहीं थी। युद्ध के समय उन्होंने ब्रिटिश साम्राजय के अस्तित्व को बचाने के लिए जो सहायता की घोषणा की थी, वह उनके आपदग्रस्त धर्म में सहायता के सिद्धान्त के अनुकूल ही था। संक्षेप में उनके इस परिवर्तित दृष्टिकोण की भी समीक्षा करना उचित ही रहेगा।

प्रथम विश्व युद्ध में (4 अगस्त, सन् 1914) जर्मनी की विजय और मित्रराष्ट्रों की प्रारम्भिक पराजय ने भारत के सभी लोगों को सोचने का अवसर दिया। तिलक आपद्ग्रस्त धर्म के सही भाष्य को समझते थे, फलतः उन्होंने 'विपत्ति में पड़े शत्रु' की सहायता करने के सिद्धान्त का परिपालन किया। ''संकट में फॅसे हुए शत्रु को भी परेशान नहीं करना चाहिए, कुछ इस भावना से प्रेरित होकर और कुछ यह सोचकर कि यदि इस समय हम अंग्रेजाके की सहायता करेंगे तो अंग्रेज कृतज्ञ होकर हमें हमारे उचित राजनीतिक अधिकार छोड़ देंगे।'' उन्होंने केसरी के माध्यम से अंग्रेजाकें को सहायता दिये जाने को सिद्धान्त रुप में स्वीकार कर लिया। युद्ध काल में अंग्रेज भारत के सम्बन्ध में उदारतापूर्वक घोषणायें करते रहे।

होमरुल आन्दोलन के काल में 20 अगस्त, सन् 1917 को भारत मन्त्री मिस्टर माण्टेन्यु ने ब्रिटिश संसद् में यह घोषणा की थी, ''नवीन शासन—सुधारों के सम्बन्ध में भारतवासियों से मिलकर बातचीत करने के लिए मैं स्वयं भारत जाऊँगा।'' इस घोषणा से उदारवादियों के बेहद खुशी हुई। मोण्टेग्यू ने ब्रिटिश संसद में भारत को उदारवादी शासन देने की घोषणा की थी। इस घोषणा के बाद 9 नवम्बर, सन् 1917 को वह भारत आये। जिलक होमरुल लीग के शिष्ट मण्डल के साथ उनसे मिले। जितना स्पष्ट उत्तर तिलक ने दिया उसका विवरण इस प्रकार से है। ''मि0 मोण्टेग्यू ने मुझसे एक सीधा प्रश्न किया, 'क्या भारत के लोग उसे स्वीकार कर लेंगे जो कुछ हमें देंगे, या वे उसे लेने से इन्कार कर देंगे? मैंने उत्तर दिया इंगलैण्ड का जनतन्त्र भारतवासियों को जो हुछ देगा, उसे हम स्वीकार कर लेंगे और जो कुछ नहीं दियागया, उसके एक कशमकश जारी रखेंगे। इस पर मि0 मोण्टेग्यू ने कहा—''आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने मेरे प्रश्न का उत्तर इतना शीघ्र ओर निश्चयात्मक रुप में दिया है।'' तिलक ने यह विवरण इस भेंट के बाद अपने मित्र को दिया था। इस भेंट से तिलक और मोण्टेग्यू परस्पर एक दूसरे से प्रभावित हुए। तिलक ने वैसे मोण्टेग्यू की घोषणा को 'सूर्यहीन उषा' की संज्ञा दी थी।

सन् 1917 के इस मिलन के बाद युद्ध जब समाप्ति पर था, तब सन् 1919 के अधिनियम की रचना हुई। मोण्टेग्यू—चेम्सफोर्ड के सुधारों के प्रति अमृतसर अधिवेशन ने सुलह के रुप में प्रस्ताव पास किया। तिलक की आशावादिता पर पानी फिर गया। देश को रोलेट एक्ट मिला। गॉधी जी के असहयोग को उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया था, लेकिन उसमें भाग लेने से पूर्व ही उनका जवन दीप बुझ गया। तिलक के सम्पूर्ण जीवन में राजनीतिक व्यवहार का आधार भगवद्गीता का यह वाक्य था, 'ये यथा मॉ प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्' इसका अर्थ है, जो लोग मेरे पास जिस भावना से आते हैं, मैं उनके साथ वैसा ही व्यवहार करता हूॅ। तिलक के प्रति अंग्रेज शासन कभी भी उदार नहीं रहा—फिर भला तिलक से यह कैसे आशा की जा सकती थी कि वह विनम्रयाचक बने रहें। नका लक्ष्य स्वराज्य था, जो ब्रिटिश शासन को अप्रिय था। उन्होंने अन्तिम सॉस तक स्वराज्य के ही गीत गाये।

संदर्भ सूची :–

1. विद्या वाचस्पति इन्द्र लोकमान्य तिलक और उनका युग से उद्धृत। पृष्ठ सं0—226
2 रामगोपाल लोकमान्य तिलक से उद्धृत। पृष्ठ सं0—239
3 दिनकर रामधारी सिंह संस्कृत के 4 अध्याय। पृष्ठ सं0—515
4 विद्या वाचस्पति इन्द्र लोकमान्य तिलक और उनका युग से उद्धृत। पृष्ठ सं0—166
5 शे थ्योडोर, एल0—दि0 लिगेसी ऑफ दि लोकमान्य,। पृष्ठ सं0—75
6 एनी बेसेन्ट'—इण्डिया, बाउण'ड बार फ्री,। पृष्ठ सं0—158—59
7 चिन्तामणि, सी0वाई0— इण्डियन पालिटि'क्स सिन्स म्यूटिनी, पृष्ठ सं0—116—188
8 निहालसिंह, गुरुमुख—लैंडमार्क्स' इन इण्डियन कौस'ट'ीड्यूशनल एण्ड नेशनल डेवलपमैंट, पृष्ठ सं0—156
9 गोल्डबर्ग एण्ड देजट—तिलक एण्ड दी स्ट्रगिल फॉर इण्डियन फ्रीडम, पृष्ठ सं0—628
10 ब्रेन, रोबर्ट—(लेख) बाल गंगाधर तिलक (पुस्तक) ग्रेट मैन ऑफ इण्डिया (सम्पादित), पृष्ठ सं0— 256
11 राम गोपाल—लोकमान्य तिलक, पृष्ठ सं0—236